

हिन्दी २३६

०४/१८०५



राज विकासमाला

गुरुवारपूर

साहित्य मण्डल प्रकाशन

२२

१०००

समाज-विकास-माला : ११६

गुरुवायूर

केरल के एक महान तीर्थ का परिचय

●

लेखक

श्रीपाद जोशी

११४०४

●

संपादक

यशपाल जैन

२२६

पुस्तक भेंट के लिखित है

●

१९६०

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक

मार्तण्ड उपाध्याय

मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल

नई दिल्ली

पहली बार : १९६०

मूल्य

४० सतीस नये पैसे

मुद्रक

युगान्तर प्रेस,

दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदिमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ सबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के मामले में भी विशेष ध्यान रखा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में किसी सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

—मंत्री

पाठकों से

आपने इस माला में अनेक तीर्थों का हाल पढ़ा है । इस पुस्तक में हम दक्षिण के एक महान तीर्थ का परिचय दे रहे हैं । गुरुवायूर का नाम लोगों को उतना मालूम नहीं है, जितना दक्षिण के अन्य तीर्थों का, लेकिन वहां के मंदिर और मूर्ति का बड़ा ही माहात्म्य है । हजारों-लाखों नर-नारी हर साल वहां की यात्रा करते हैं ।

तीर्थों की यात्रा का अपने-आपमें बड़ा लाभ है । उसके साथ-साथ अपने देश के भी दर्शन हो जाते हैं । देश के साथ गहरा नाता जुड़ जाता है ।

हम आशा करते हैं कि यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी ।

—सम्पादक

गुरुवायूर

: १ :

गुरुवायूर का महत्त्व

जब हम लोग अखिल भारत सर्वोदय-सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में शामिल होने के लिए केरल गये थे तब सम्मेलन के समाप्त होने पर मैंने केरल के एक सज्जन से पूछा, “क्यों भाई, केरल का सबसे बड़ा मंदिर कौन-सा है ?”

वह सज्जन बोले, “अगर शान-शौकत और तड़क-भड़क के हिसाब से आप पूछते हैं तो कहना पड़ेगा कि तिरुअनंतपुरम् (ट्रिवेंद्रम्) का अनंतशयनम् (भगवान् विष्णु) का मंदिर सबसे बड़ा है। लेकिन अगर आप ऐसा मंदिर देखना चाहते हैं जहां सबसे ज्यादा लोग दर्शन करने आते हैं, तो वह है गुरुवायूर का कृष्ण-मंदिर। गरीब-अमीर, छोटे-बड़े, मलयालम-तमिल-कन्नड़ भाषाएं बोलनेवाले हजारों नहीं, बल्कि लाखों नर-नारी

गुरुवायूर का दर्शन करने हर साल गुरुवायूर पहुंचते हैं। आप किसी भी दिन वहां चले जाइये, आपको खूब भीड़ दिखाई देगी। असल में वह ग्राम जनता का सबसे प्यारा मंदिर है।”

“तब तो उसके दर्शन अवश्य करने चाहिए।” मैंने कहा।

“आपकी दिलचस्पी की और एक बात उस मंदिर में है। आपने सुना होगा कि केरल के एक सर्वोदय नेता श्री केलप्पनजी के नेतृत्व में सन् १९३१ ई० में इस मंदिर में हरिजनों को प्रवेश दिलाने के लिए जोरदार सत्याग्रह हुआ था। उन दिनों एक महीने तक गुरुवायूर का मंदिर बंद रहा था। उसके बाद केलप्पनजी ने उस मंदिर के सामने १२ दिन तक अनशन किया था। वह तो आमरण अनशन करनेवाले थे, मगर महात्मा गांधी के कहने पर उन्होंने अनशन तोड़ दिया।

“फिर क्या हुआ?” मैंने पूछा।

“उसके बाद हरिजनों को मंदिर में प्रवेश दिलाने की कोशिशें चलती रहीं। आखिर जब यहां जनता की सरकार कायम हुई तब हरिजनों को मंदिर में जाने की इजाजत मिल गई।” उन सज्जन ने कहा।

समय निकालकर मैं वह मंदिर देखने गया। वह

दक्षिणी मलाबार की पोन्नानी तहसील में गुरुवायुपुरम् नाम के एक गांव में है। (गुरुवायुपुरम् का नाम बदलकर उसीका गुरुवायूर बन गया है।) मद्रास से कोचीन जानेवाली दक्षिणी रेल के मार्ग पर शोरनूर, पट्टांबी, कुट्टीपुरम् और त्रिचूर चार स्टेशन हैं। इनमें से किसी भी स्टेशन से गुरुवायूर के लिए बस मिल सकती है। गुरुवायूर शोरनूर से ३० मील, पट्टांबी से २१ मील, कुट्टीपुरम् से २७ मील और त्रिचूर से ११ मील दूर है। उन दिनों विनोबाजी दो दिन के लिए त्रिचूर में ठहरे थे। उनसे मिलने के लिए मुझे वहां जाना ही था। इसलिए गुरुवायूर के बहुत नजदीक पहुंच गया था।

मैं मलयालम भाषा या लिपि नहीं जानता था। वहां के आम लोग न हिंदी जानते हैं, न अंग्रेजी। मेरे साथ मलयालम जाननेवाला कोई व्यक्ति न था। इसलिए बस खोजने और गुरुवायूर तक पहुंचने में कुछ कठिनाई हुई। एक बस तो मेरे सामने से गुजरी जो गुरुवायूर जा रही थी; पर उसपर लगी हुई तख्ती न पढ़ सकने की वजह से मैं उसे देखता ही रहा। आधे घंटे के बाद दूसरी बस निकली तो उसमें मुझे जगह मिल गई। बाद में पता चला कि मुझे पहली बस मिल भी

जाती तो भी मुझे फायदा न होता, क्योंकि गुरुवायूर का मंदिर शाम को पांच बजे खुलता है। पहले पहुंचकर मुझे वहां चुपचाप बैठे रहना पड़ता।

त्रिचूर से गुरुवायूर तक प्राइवेट यानी निजी बसें भी चलती हैं और सरकारी बसें भी। सरकारी बसें बड़ी आराम-देह होती हैं, वक्त की पाबंद भी; मगर उनमें किराया कुछ ज्यादा लगता है। निजी बसों का किराया कुछ कम जरूर होता है, मगर उनमें बड़ा ही अंधेरा रहता है। कितने आदमियों को अंदर बिठाओ, इसका कोई नियम कानून नहीं। समय की तो किसीको परवा ही नहीं होती। जबतक ग.ड़ी ठसाठस भर न जाय तबतक वह नहीं छूटती। मैं जाते समय निजी बस में गया और आते समय सरकारी बस में आया। जाने में १२ आने किराया लगा, आने में १५ आने। वैसे मील के हिसाब से किराया दस आना ही होता था, मगर गुरुवायूर के पश्चिम में डेढ़ मील पर चौघाट नाम का एक कस्बा है। वहां हर बस को जाना पड़ता है। इसलिए तीन मील का चक्कर मुसाफिरों को बेकार काटना पड़ता है और थोड़ा समय और पैसा भी बरबाद हो जाता है। बीच-बीच में रुकती हुई और मुसाफिरों को छोड़ती-लेती हुई हमारी बस लगभग डेढ़ घंटे के बाद गुरुवायूर पहुंची।

आते समय सरकारी बस ने वही फासला एक घंटे में तय किया ।

: २ :

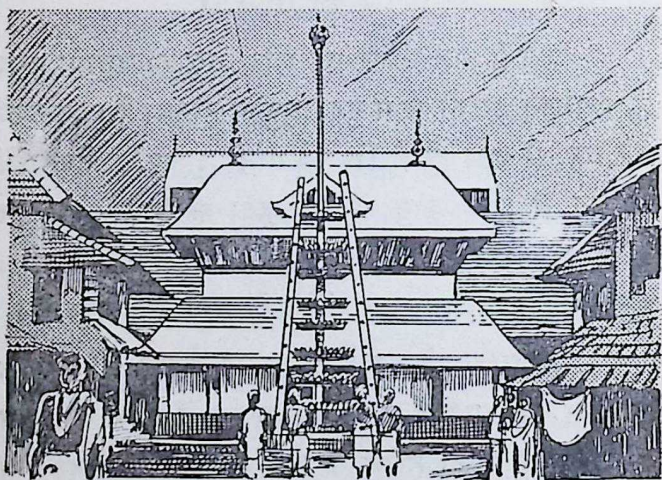
मंदिर की कहानी

कहते हैं, यह मंदिर गुरु और वायु का बनाया हुआ है, इसलिए इसका नाम गुरुवायुपुरम् होगया है । पाठकों को यह तो पता ही है कि गुरु यानी बृहस्पति देवताओं के गुरु थे और वायु कहते हैं हवा के देवता को । इन दोनों ने मिलकर यहां मूर्ति की स्थापना की थी । इसलिए उनका नाम इस मंदिर के साथ जुड़ गया है ।

महाभारत की यह कथा पाठक जानते ही हैं कि ऋषियों का अपमान करने के अपराध में राजा परीक्षित को सांपों के राजा तक्षक के दंश का शिकार होना पड़ा था । उसके बाद उसका बेटा जनमेजय जब राजा बना तो उसने अपने बाप के खून का बदला खून से लेने की प्रतिज्ञा की और दुनिया से सांपों का नामोनिशान मिटाने के लिए उसने 'सर्पयज्ञ' किया, जिसमें हजारों-लाखों सांप जल मरे ।

मगर इस 'सर्पयज्ञ' से जनमेजय को निरपराध

जीवों को व्यर्थ ही मार डालने का पाप लगे गया। उस पाप के कारण उसे भयानक कोढ़ हो गया। इस कोढ़ पर कोई दवा नहीं चली। आखिरकार राजगुरु ने यह उपाय सुझाया कि राजा को श्रीकृष्ण भगवान् की शरण जाना चाहिए। पर वह भी कोई मामूली बात नहीं थी।



गुरुवायूर का मंदिर

राजगुरु ने कहा, “किसी ऐसी-वैसी मूर्ति की उपासना करने से कुछ भी लाभ नहीं होगा। इस पाप से छुटकारा पाने के लिए एक खास मूर्ति की पूजा आपको करनी होगी।”

“मैं सबकुछ करने को तैयार हूँ, गुरु महाराज !

किसी तरह इस घिनोने रोग से मेरा पिंड छूट जाय ।”
जनमेजय ने कहा ।

“तो सुनो ! कृष्ण भगवान् की द्वारिका नगरी सागर में डूब गई है । उसी नगरी में श्रीकृष्ण की एक मूर्ति है । आपको उसी मूर्ति की पूजा करनी होगी ।” राजगुरु ने कहा ।

“सो तो करूंगा ही, गुरुजी ! पर वह मूर्ति मुझे कैसे मिलेगी ? सागर में डूबी हुई इतनी बड़ी द्वारिका में मुझे उस छोटी-सी मूर्ति का पता कैसे लगेगा ?”
जनमेजय ने पूछा ।

“उसके लिए आप देव-गुरु बृहस्पति और वायु-देवता से प्रार्थना करो । वे ही आपकी मदद कर सकेंगे; दूसरा कोई इसमें कुछ नहीं कर सकता ।” राजगुरु ने कहा ।

“जैसी आपकी आज्ञा !” कहकर राजा जनमेजय ने गुरु और वायु से कई रोज तक प्रार्थना की । आखिर वे दोनों देवता जनमेजय पर प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीकृष्ण भगवान् की समुद्र में डूबी हुई मूर्ति बाहर निकालकर जनमेजय के लिए ला दी । उस मूर्ति के लिए जनमेजय ने जो मंदिर बनाया, उसीका नाम पड़ा गुरुवायुपुरम् । इस मूर्ति के सामने बैठकर जनमेजय ने

बड़ी कठिन तपस्या की। उस तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे उसके महारोग से मुक्त किया। तबसे लेकर आज तक लोगों में यह श्रद्धा बनी हुई है कि भगवान् गुरुवायूरप्पा यानी श्रीकृष्ण की पूजा करने से, मन्त्र मानने से, कोढ़-लकवा जैसी बीमारियां दूर हो जाती हैं। हर साल हजारों लोग इस तरह की मन्त्र मानने और पूरी करने के लिए गुरुवायूर पहुंच जाते हैं। जिन लोगों की मन्त्र स्वीकार होती है, वे भगवान् को कुछ भेंट चढ़ाते हैं, खास करके सोने या चांदी की छोटी-छोटी मूर्तें भेंट चढ़ाई जाती हैं। ये मूर्तें आदमी की होती हैं। इन्हें केरल की भाषा में 'अलरूपम्' कहते हैं। आदमी के शरीर के हिस्से—जैसे हाथ, पांव, नाक, कान, आंख इत्यादि भी सोने-चांदी के बनाकर भगवान् की भेंट करते हैं। जिस आदमी की आंखें खराब होगई हों वह भगवान् से मन्त्र मानता है, "अगर मेरी आंखें ठीक हो जायं तो मैं तुमपर चांदी (या सोने की) आंख भेंट चढ़ाऊंगा।" जब उसकी आंखें ठीक हो जाती हैं तो वह गुरुवायूर जाकर अपनी मन्त्र पूरी करता है।

लोगों की सुविधा के लिए गुरुवायूर के मंदिर में इस तरह की सोने-चांदी की मूर्तें और शरीर के अंग तैयार रखे रहते हैं। आदमी अपनी हैसियत के अनुसार

मंदिर के भंडार में कुछ आने या रुपये डाल देता है और चौकीदार से सूरत लेकर भगवान् पर चढ़ाता है। बाद में वही सूरत चौकीदार के खजाने में आ जाती है। जो लोग इस प्रबन्ध के बारे में नहीं जानते, उन्हें गुरुवायूर के दलाल अपनी बनाई झूठी मूर्तियां देकर काफी ठगते हैं।

गुरुवायूर के बारे में और भी एक कहानी है।

कहते हैं, गुरुवायूर के मंदिर की मूर्ति कोई मामूली मूर्ति नहीं है। वह श्रीविष्णु की वही मूर्ति है जो उन्होंने स्वयं ब्रह्मा को दी थी। ब्रह्मा से वह मूर्ति भगवान् श्रीकृष्ण को मिली। हालांकि श्रीकृष्ण खुद महाविष्णु के अवतार थे, फिर भी वह मामूली इन्सान की तरह द्वारिका में रहते थे और इस मूर्ति की पूजा करते थे।

महाभागवत में बताया गया है कि एक साधारण मनुष्य के नाते इस संसार से विदा होते समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने साथी और शिष्य ऊधो को अपना उपदेश दे रहे थे। इस उपदेश के बीच में उन्होंने उद्धव से कहा, “तुम जाकर वायु देवता और गुरु महाराज से यह कह देना कि मेरी यह इच्छा है कि द्वारिका के समुद्र में डूब जाने से पहले वे भगवान् विष्णु की यह मूर्ति

यहां से ले जायं और लोगों के लाभ के लिए उसे किसी अच्छे स्थान पर रखें ।”

इस आदेश के अनुसार गुरु और वायु ने द्वारिका की वह मूर्ति ले ली और वे ऐसे स्थान की खोज में निकले जो उस मूर्ति की स्थापना के लिए ठीक हो ।

जब वे आकाश-मार्ग से चले जा रहे थे, उन्हें अचानक एक बहुत ही मनोहर तालाब दिखाई दिया, जिसमें अनगिनत कमल खिले हुए थे । उस तालाब में भगवान् शिव देवी पार्वती के साथ आनंद मना रहे थे । शिवजी का मंदिर उस तालाब के उत्तर में था । शिवजी ने जब इन दोनों को नीचे उतरते देखा तो उन्होंने उनसे कहा, “आप लोग इस मूर्ति को तालाब के दक्षिणी किनारे पर स्थापित करें । उस मूर्ति के लिए सारे संसार में वही सबसे अच्छी जगह है ।”

तब गुरु और वायु ने वह मूर्ति वहां रखी और उस पर छोटा-सा मंदिर बनाया । इस मंदिर की रक्षा के लिए वे दोनों यहां रह गये । मन्दिर के पूरबी दरवाजे पर जो दो गोल-मटोल पत्थर हैं वे यही वायु-गुरु हैं जिन्हें वहां की भाषा में ‘बेलिक्वल्लु’ कहते हैं । भगवान् के साथ इन्हें भी भोग चढ़ाया जाता है ।

कई सौ बरस बीत गये । वह मंदिर छोटा ही

रहा। आगे चलकर उस इलाके पर राज करनेवाले पांड्य वंश के एक राजा को उसके ज्योतिषियों ने बताया, “महाराज, आपकी जन्म-पत्री से यह साफ प्रकट है कि आपकी मृत्यु सांप के काटने से अकाल में ही होने-वाली है।”

“तो क्या इस अकाल की मृत्यु से छुटकारा पाने का कोई रास्ता नहीं है?” राजा ने घबराकर पूछा।

“है क्यों नहीं, महाराज ! आप अगर अपनी मृत्यु का दिन बीत जाने तक तीर्थयात्रा करते रहें तो यह अकाल-मृत्यु टल सकती है।” ज्योतिषियों ने बताया।

राजा तीर्थ-यात्रा के लिए निकला। उसने सैकड़ों मंदिरों में जाकर देवताओं के दर्शन किये और पवित्र नदियों और तीर्थों में स्नान किया। जब उसकी मृत्यु का दिन पास आया तब तो वह गुरुवायूर के मंदिर में पहुंच गया। उस स्थान की शोभा और महिमा देख-सुनकर राजा ने वहींपर रहने का इरादा किया। भगवान् गुरुवायुरप्पा की पूजा-भक्ति में न मालूम कितने महीने और कितने साल गुजर गये। समय का तो उसे कुछ खयाल ही न रहा। बाद में जब उसे पता चला कि उसकी मौत का दिन तो कब का टल चुका है, तो वह भगवान् का निहोरा मानता हुआ अपनी राज-

धानी में लौट आया ।

राजा ने अपने ज्योतिषियों को बुलवाकर उनसे पूछा,
“यह बताइये कि आपका ज्योतिष कैसे भूठ हुआ ?”

ज्योतिषी बोले, “महाराज, हमारा ज्योतिष भूठा नहीं हुआ । आप अपना दाहिना पांव देखिये, उसपर एक नाग के दो दांतों के निशान अभी तक बने हुए हैं ।”

राजा ने देखा । सचमुच उसके पांव में दो दांतों के निशान मौजूद थे ।

ज्योतिषी बोले, “महाराज, हमने जो समय आपको बताया था उस समय पर एक जहरीले नाग ने आपको जरूर काटा था, मगर उस समय आप भगवान् के चिन्तन में लगे हुए थे और यह सोच रहे थे कि भगवान् का मंदिर बड़ा शानदार बनाना चाहिए । जब आपका मन इतनी अच्छी बातें सोच रहा था तब भला नाग का जहर आपका क्या बिगाड़ सकता था !”

राजा को सारी बातें याद आगईं और तुरंत काफी पैसा और आदमी साथ लेकर वह फिर एक बार गुरुवायूर चला गया । वहां काफी दिन रहकर उसने मलाबार ढंग का बड़ा मंदिर बनवा लिया ।

उसके बाद कई राजाओं ने समय-समय पर उस मंदिर को और बढ़ाया ।

: ४ :

मंदिर कैसा है ?

आइये, अब हम देखें कि गुरुवायूर का यह मंदिर कैसा है ।

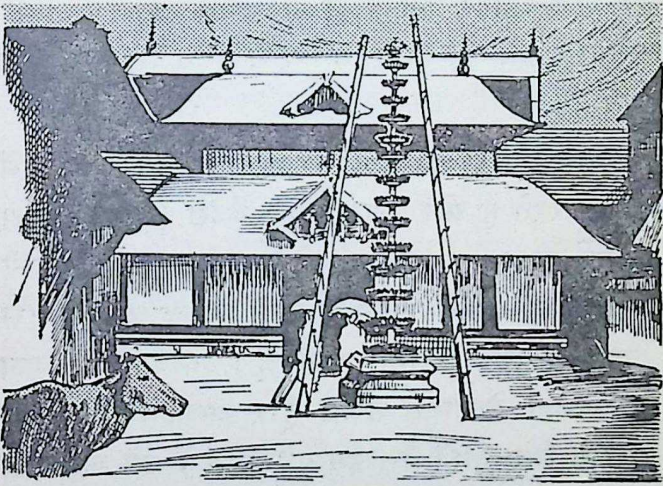
ग्राम तौर पर यह देखा जाता है कि मंदिर के सामनेवाले दरवाजे पर ही आदमी पहले पहुंच जाते हैं और उसीमें से मंदिर में जाते हैं । मगर गुरुवायूर में यह बात नहीं है । आपकी बस जहां ठहरती है, वहां से आपको जो दरवाजा दिखाई देता है, वह उसका पिछला दरवाजा है । इसे पश्चिमी गोपुरम् कहते हैं । नया आदमी यही समझता है कि मंदिर में प्रवेश करने का यही दरवाजा है । मगर उसके बाहर जो चौकीदार रहता है वह पुजारियों को छोड़ दूसरे किसीको उस दरवाजे से जाने नहीं देता । तब हम मंदिर की आधी परिक्रमा करके उसके सामनेवाले यानी पूरबी दरवाजे पर पहुंच जाते हैं । दक्षिण के बड़े-बड़े मंदिरों के मुकाबले में गुरुवायूर का मंदिर बहुत छोटा है । फिर भी मजबूत अच्छा-खासा है । मंदिर की चहारदीवारी भी काफी ऊंची और ठोस है ।

अपनी हमेशा की आदत के अनुसार मैंने जूते

निकालकर बाहर रखे और बड़े दरवाजे में से अंदर जाने लगा । इतने में चारों ओर से बड़ा शोरगुल सुनाई देने लगा । मैंने चौंकर इधर-उधर देखा तो पता चला कि वह शोरगुल मेरे कारण ही हो रहा था । वे लोग मल-यालम भाषा में जोर-जोर से कुछ रहे थे, जिसका मतलब मेरी समझ में नहीं आया । मगर उन्होंने हावभाव और इशारों की मदद से मुझे समझाया कि इस मंदिर में सिला हुआ कपड़ा पहनकर कोई नहीं जा सकता । तब मैंने अपने कपड़े उतार दिये और सिर्फ एक तौलिया कमर में लपेटकर मैं अंदर चला गया । वैसे यह दस्तूर दक्षिण भारत के कई मंदिरों में आज भी जारी है कि उसमें सिले हुए कपड़े पहनकर कोई अंदर नहीं जा सकता । धोती या लुंगी पहनकर ही आदमी भीतर जा सकता है । बहुत धूप या जाड़ा हो तो धोती या तौलिया ओढ़ भी लेते हैं । मगर वहां की जल-वायु अक्सर ऐसी रहती है कि ओढ़ने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती ।

अंदर जाकर देखा तो मंदिर का अहाता बड़ा ही साफ-सुथरा दिखाई दिया । मिट्टी, कीचड़ या गंदगी का कहीं नाम तक नहीं था । चौड़ा आंगन था, पत्थरों का पक्का फर्श था ।

सामने ही ऊंचा ध्वज-स्तंभ दिखाई दिया । इस ध्वज-स्तंभ की ऊंचाई लगभग ६० फुट है । 'कुरुमतोष्टि' नाम की लकड़ी का यह एक ही पूरा साबुत टुकड़ा है । उसके ऊपर कांसे का पत्तर जड़ा हुआ है; इसलिए वह



पूरबी गोपुर और दीप-स्तंभ

बरसों तक टिक सकता है । सन् १६४६ में जब नया ध्वज-स्तंभ बनाया गया तब कांसे के पत्तर पर सोने का मुलम्मा किया गया । उस पर सवा लाख रुपया खर्च हुआ था । इस ध्वज-स्तंभ के दोनों तरफ एक-एक

दीप-स्तंभ है, जिनपर छोटे-छोटे दीप जलाने की सुविधा की गई है।

पूरब-दक्षिण के कोने में कीर्तन की जगह है जिसे 'कूतम्बलम्' कहते हैं। 'कूतु' यानी भगवान् का कीर्तन। इस स्थान पर साल में दो बार 'कूतु' होता है। बाकी हर रोज वहांपर दिन में दो बार भागवत का पारायण चलता रहता है, जिसे सुनने के लिए सैकड़ों लोग आते हैं।

मुख्य मंदिर के चारों ओर छोटे-बड़े कमरे हैं, जिनमें पुजारी रहते हैं और भगवान् का नैवेद्य (भोग) वगैरा बनाया जाता है। दक्षिण की तरफ जो दो-मंजिली इमारत है, उसमें ऊपर के तल्ले में एक खास पुजारी रहता है जिसे 'मेलसन्ती' कहते हैं। भगवान् की पूजा वगैरा यही मेलसन्ती करता है। इसकी नियुक्ति एक साल के लिए होती है। इस पूरे साल में उसे ब्रह्मचारी रहना पड़ता है। इतना हो नहीं, बल्कि वह मंदिर की चहारदीवारी से बाहर भी नहीं जा सकता।

नीचे के कमरे में मंदिर का खजाना रहता है, जिसमें दो-दो ताले लगे हुए होते हैं।

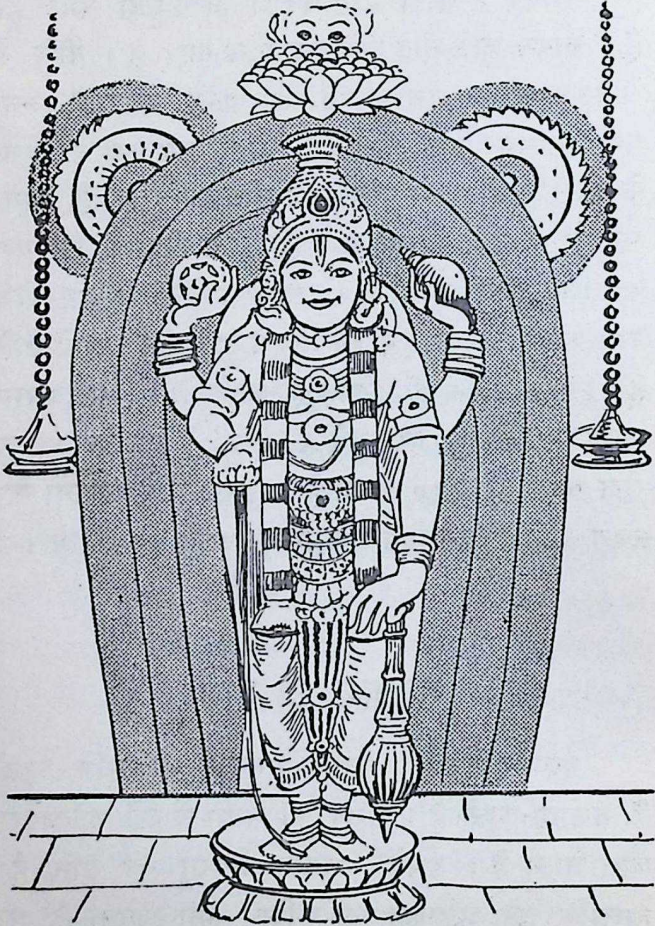
पश्चिम की तरफ रसोईघर और 'अग्रशाला' है, जहां सैकड़ों ब्राह्मण एक साथ भोजन कर सकते हैं।

मंदिर के चारों ओर लकड़ी की पट्टियां बनी हुई हैं, जिनपर छोटे-छोटे दीये जड़ दिये गए हैं। नीचे से लेकर ऊपर तक इन पट्टियों की ग्यारह कतारें हैं, जिनपर लगभग सात हजार दीये लगाये हुए हैं। इनके अलावा मंदिर में पांच छोटे-छोटे दीप-स्तंभ हैं, जिनपर सैकड़ों दीये जलाये जाते हैं। इन दीयों में नारियल का तेल जलाया जाता है। उत्सव के दिनों में हर रोज रात को ६.३० से १२.३० तक ये सारे दीप जलाये जाते हैं। इस कार्यक्रम को 'विलक्कु' कहते हैं। (मलयालम भाषा में 'विलक्कु' के मानी हैं 'दीया') इस विलक्कु का रोज का खर्चा २५० रुपया है। इससे आप कल्पना कर सकते हैं कि कितने दीये एक-साथ जलते रहते होंगे।

: ५ :

भगवान् की मूर्ति

मुख्य मंदिर को, जिसमें भगवान् की मूर्ति रहती है, गर्भगृह कहते हैं। केरल की भाषा में उसे 'श्रीकोट्टल' कहा जाता है। इसमें भगवान् विष्णु की मूर्ति है। हालांकि इसे श्रीकृष्ण का मंदिर कहा जाता है, पर मूर्ति विष्णुजी की ही है। और जो कहानी हम पहले दे चुके हैं, उससे भी यही सिद्ध होता है कि यह मूर्ति



भगवान् गुरुवायूरप्पा

विष्णु भगवान् की ही है। अपने चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा, पद्म (कमल का फूल) लिये हँसमुख भगवान् विष्णु बड़े मोहक दिखाई देते हैं। भगवान् की असली मूर्ति काले पत्थर की है। मगर उसके सारे शरीर पर घिसा हुआ चन्दन कलापूर्ण ढंग से थोप देते हैं, जिससे गोरे मालूम पड़ते हैं। दिन में आमतौर पर चार बार पूजा होती है। हर बार नया चन्दन लगाया जाता है। इसलिए दिन-भर चन्दन घिसने का काम कई नम्बूदरी (नम्पूतिरि) ब्राह्मण करते रहते हैं। ये ब्राह्मण सैकड़ों पुस्तों से यही काम करते आये हैं। यहां साल भर में लगनेवाले चन्दन की कीमत—उसके घिसवाने की मजदूरी को मिलाकर—लगभग ३५०० रुपये होती है। इससे अन्दाजा लग सकता कि कितना चन्दन हर रोज लगता होगा।

मेरे मन में विचार आया, मूर्ति पर यह चन्दन क्यों थोपा जाता होगा? एक कारण तो बिल्कुल साफ है कि हमारे इस गरम देश में शरीर को ठंडक पहुंचानेवाला चन्दन बड़ा ही मुफीद साबित होता है। उसकी भीनी खुशबू दिमाग को तरोताजा कर देती है।

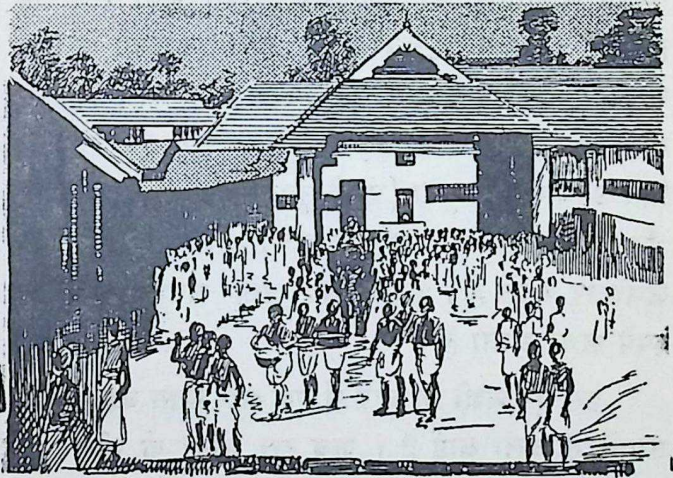
दूसरा कारण है, गोरे रंग की ओर हमारा झुकाव। हम भारत के लोग आमतौर पर सांवले या काले रंग के

होते हैं। शायद इसीलिए हमें गोरा रंग ज्यादा भाता है। वैसे हमारे देवता भी हमारी ही तरह काले रंग के होते हैं। फिर वह कृष्ण हो, राम हो, तिरुपति का बालाजी हो, या तिरुअनंतपुरम् का अनंतशयनम् हो; सब सांवले हो हैं। पर हमें गोरा रंग ज्यादा पसंद होने से हम उन्हें गोरा बनाने की कोशिश करते रहते हैं।

शाम की पूजा के बाद मंदिर के अहाते में ही भगवान् का जुलूस निकाला गया, जिसे मैं अपनी आंखों से देख सका। इस जुलूस को वहां की भाषा में 'शिवेली' कहते हैं। इस जुलूस में भगवान् की एक छोटी-सी सोने की मूर्ति हाथ में लेकर मंदिर का खास पुजारी मेलसंती मंदिर के हाथी पर बैठता है। हाथी के आगे बाजे बजते रहते हैं और लोग भगवान् कृष्ण के भजन गाते जाते हैं। बीच-बीच में कृष्णजी के नाम के नारे भी लगाये जाते हैं। आगे की ओर चांदी के बारह दिये हाथ में लेकर बारह लोग चलते रहते हैं। ये लोग भी पुस्तंती तौर पर यह काम करते आये हैं। मूर्ति को लेकर हाथी से तीन परिक्रमाएं कराई जाती हैं। दिनभर में यह जुलूस तीन बार निकाला जाता है। इस जुलूस में दिन में लगभग छः सेर घी जलता है।

गुरुवायूर का यह मंदिर मलाबार का सबसे माल-

दार देवालय समझा जाता है। इसकी मालिकी की जमीन से लगभग डेढ़ लाख रुपया लगान के रूप में आता है। इसके अलावा हर रोज आनेवाले भक्तों से सालभर में लगभग दो लाख रुपया जमा होता है। इसका खर्चा



भगवान् का जुलूस

भी बहुत ज्यादा है। सालभर में मनो चावल भोग के लिए पकता है। दूध, घी, फूल, फल आदि का खर्चा भी बहुत होता रहता है। इस देवस्थान का, जिसे यहां की भाषा में 'देवस्वम्' कहते हैं, एक बाकायदा दफ्तर है, जिसके संचालक को साहावारी ढाईसौ रुपया तनखाह मिलती है।

यहांपर साल में कई उत्सव मनाये जाते हैं, जिनमें

कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से शुरू होनेवाला 'मंडलम्' उत्सव लगातार ४१ दिन चलता रहता है। इन दिनों लाखों यात्री भगवान् के दर्शन के लिए आते हैं। हजारों ब्राह्मणों को मिष्टान्न-भोजन खिलाया जाता है। इस उत्सव में कार्तिक की एकादशी के दिन बड़ा समारोह होता है। यह माना गया है कि इसी एकादशी के दिन भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता का उपदेश दिया था। इसलिए इसका महत्त्व और भी बढ़ गया है। इस एकादशी के दिन उदयास्तमय पूजा (यानी सुबह-शाम की पूजा) और 'विलक्कु' (दिये जलाना) का खर्चा कोचीन के एक धनी जमीदार करते हैं। इसके लिए उन्हें लगभग २५०० रुपये खर्चा आता है।

इस एकादशी के बारे में एक और खास बात पुराने जमाने से चली आई है। जब इस मंदिर के भीतर तो दूर, मंदिर की दीवारों के पास भी कोई अछूत नहीं जा सकता था उस जमाने में एकादशी के दिन सभी अछूत इस मंदिर में जाकर भगवान् के दर्शन कर सकते थे। उस दिन कोई भी हिन्दू मंदिर में जाकर ब्राह्मणों की तरह भगवान् की पूजा कर सकता था।

इसी तरह चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से वैशाख शुक्ला प्रतिपदा तक इस मंदिर में 'वैशाख' उत्सव मनाया

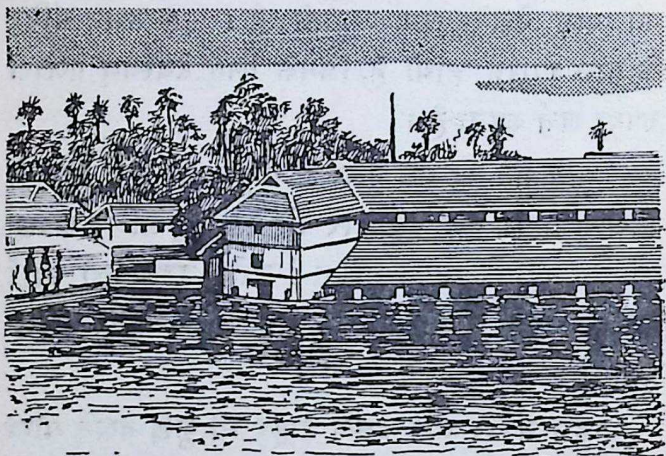
जाता है। उसमें भी काफी लोग शामिल होते हैं। मगर एकादशी के बाद सबसे बड़ा समारोह 'उत्सवम्' का होता है जो ग्राम तौर पर माघ महीने में पड़ता है और दस दिन तक चलता है। इन दिनों मंदिर के हाथियों की दौड़ देखने लायक होती है। इस समय मंदिर के पास ग्यारह हाथी हैं, जिनके लिए देवस्वम् हजारों रुपया खर्च करता है।

जब मैंने यह सब देखा और सुना तो मेरे मन में विचार आया, क्या इस सारे पैसे का कुछ अधिक अच्छा उपयोग नहीं किया जा सकता ! गरीब बच्चों की पढ़ाई के काम अगर यह पैसा आ जाय तो कितना अच्छा होगा !

इस मंदिर और उसके बाहर भी कुछ देखने योग्य चीजें हैं। उनमें एक है मंदिर का कुआं। कहते हैं, इस कुएं में भगवान् वरुण निवास करते हैं और इसका पानी बड़ा ही मुफीद होता है। इस पानी का स्वाद भी बड़ा मीठा होता है। इसलिए कई लोग गुरुवायूर जाने पर चाय-काफी पीने के बजाय इस कुएं का पानी पीना ही पसन्द करते हैं।

मंदिर के बाहर एक छोटा-सा तालाब है, जिसके बारे में यह कहा जाता है कि हजारों बरस पहले वहां

मीलों तक फैला हुआ एक सरोवर था जिसमें भगवान् शिवजी और माता पार्वती क्रीड़ा करते थे। इस वक्त यह तालाब छोटा होगया है। मगर यह माना जाता है कि भगवान् गुरुवायुरप्पा उसमें नहाते हैं। इसलिए उसका



मंदिर का तालाब

महत्त्व आज भी बहुत है। आप जब भी जायेंगे, आपको कई लोग उसमें नहाते नजर आयेंगे। गर्मियों के दिनों में उसका पानी गंदला हो जाता है; मगर भक्तों को उससे क्या ? वे तो उसे तीरथ समझकर ही नहाते हैं।

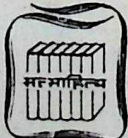
इस तरह दक्षिण भारत का एक बहुत ही लोक-प्रिय मंदिर देखकर मैं खुशी-खुशी वापस लौटा।

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

- | | | |
|-------------------------------|--------------------------------|--------------------------|
| १. बदरीनाथ | ३८. हम मुक्तो कैसे रहे ? | ७५. परमहंस की कहानियां |
| २. जगम की संर | ३९. गो-मेधा बबो ? | ७६. मोने का कगन |
| ३. भीष्म पितामह | ४०. कैलास-मानभरोबर | ७७. भागी की रानी |
| ४. सिधि घोर दधीधि | ४१. ब्रह्मा हिया या बुग ? | ७८. हुषा संवेरा |
| ५. चिनोबा घोर भूदान | ४२. नरसी महेंता | ७९. बोरवम की बातें |
| ६. कबीर के बोले | ४३. पदगुरु | ८०. मन के जीने जीन |
| ७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन | ४४. स्वाज्ञा मुईनुरोम चिन्नी | ८१. मुरखी |
| ८. गंगाजी | ४५. सन ज्ञानेश्वर | ८२. हरिद्वार |
| ९. गीतम बुद्ध | ४६. घरलो की कहानी | ८३. साधर की संर |
| १०. गांव मुक्ती, हम मुक्ती | ४७. राजा भोज | ८४. धानवान के रक्खारे |
| ११. निषाद घोर शबरी | ४८. ईश्वर का मंदिर | ८५. महाज्ञाना मालदीप |
| १२. कितनी जमीन ? | ४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश | ८६. भवू हरि |
| १३. सेजे से सरदार | ५०. ये वे नेताजी | ८७. देवताओं का प्यारा |
| १४. चेतन्य महाप्रभु | ५१. रामेश्वरम् | ८८. देश में प्रागे बढ़ना |
| १५. कहानियों की कहानियां | ५२. कबों का विसाप | ८९. हमारे मुस्लिम सन |
| १६. सरल भ्यायाम | ५३. रामकृष्ण परमहंस | ९०. नग्रा घबाबोल |
| १७. द्वारका | ५४. समय रामदास | ९१. स्वामी विवेकानंद |
| १८. बापू की बातें | ५५. मोरा के पद | ९२. प्राप बना, जग बना |
| १९. बाहुबली घोर नैमिनाथ | ५६. मिल-जुलकर काम करो | ९३. नाविक |
| २०. तंदुइस्ती हजार निषामन | ५७. कालपापी | ९४. मूर के पद |
| २१. बीमारी कैसे दूर करे ? | ५८. पावभर घाटा | ९५. संत वेमन्ना |
| २२. माटी की मूरत जागो | ५९. सवेरे की रोशनी | ९६. प्राराम हुराम है |
| २३. गिरिधर की कुइलियां | ६०. भगवान के प्यारे | ९७. गोरा-बादल |
| २४. छ्दीम के दोहे | ६१. हाकिम-रघीद | ९८. पाटलिपुत्र |
| २५. गीता-प्रवेशिका | ६२. तीर्थंकर महावीर | ९९. महर्षि धम्मस्य |
| २६. तुलसी-मानस-मोती | ६३. हमारे पटोली | १००. दानवीर कर्ण |
| २७. दादू की बाणियां | ६४. धाक-ध की बातें | १०१. शेव मादी |
| २८. नजीर की नज्मे | ६५. सच्चा तीरथ | १०२. गोदावरी |
| २९. संत तुकाराम | ६६. हाजिर-जवाबी | १०३. कुम्हार की बेंटी |
| ३०. हजरत उमर | ६७. सिद्दागन-बत्तीसी : भाग १ | १०४. नर्मदा |
| ३१. बाजीप्रभु देगपट्टे | ६८. सिद्दागन-बत्तीसी : भाग २ | १०५. नकराचार्य |
| ३२. तिरकन्नुवर | ६९. नेहरूजी का विद्यार्थी-जीवन | १०६. धम्मरत्न |
| ३३. कस्तूरबा गांधी | ७०. मूरवराज | १०७. महाराणी प्रहिल्याबा |
| ३४. बाहुद की खेती | ७१. नाना फड़नवीस | १०८. पड़ेगे-निलेगे |
| ३५. काशेरी | ७२. गुरु नानक | १०९. कोणार्क |
| ३६. तीर्थराज प्रयाग | ७३. हमारा सविधान | ११०. मंगू भैया |
| ३७. वेले की कहानी | ७४. राजेंद्रबाबू का बचपन | |

मूल्य : प्रत्येक का ४० न०००

११६



संस्कृत माहिज्य मण्डल

४० संतोस नये